Volume-II, No. 1, Feb -2015, pp. 1-7

वैदिक युगीन शिक्षा से मानव मूल्य एवं संस्कृति

डॉ0 अल्का द्विवेदी प्रवक्ता, (शिक्षाशास्त्र विभाग),
कालीचरण पी0जी0 कालेज, लखनऊ उत्तर प्रदेश भारत।

सारांश

आज समाज में चारो ओर नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों में गिरावट देखने को मिल रही है। इस गिरावट के फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में भी गिरावट देखने को मिलती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया है–''हमारे बहुवर्गीय समाज में शिक्षा को सर्वव्यापी और शावत मूल्यों को प्रोत्साहित करना चाहिए तथा भारतीय जन में राष्ट्रीय एकता की भावना बढ़े और संकीर्ण सम्प्रदायवाद, धार्मिक, अतिवाद, हिंसा, अंध–विश्वास व भाग्यवाद को समाप्त किया जा सके। हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि मनुष्य अकेला शून्य में निवास करने वाला प्राणी नही है। उसकी मूल्यपरक शिक्षा उसके विशिष्ट सामाजिक तथा सांस्कृतिक संदर्भ से जुड़ी होनी चाहिए और विश्वजनीन व शाश्वत मूल्यों से भी उनका सम्बंध होना चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण, समानता, पर्यावरण संरक्षण, प्रजातन्त्र, स्वतंत्रता, बन्धुत्व समाजवाद तथा धर्मनिरपेक्षता आदि मूल्यों की शिक्षा सभी स्तरों के लिए आवयक है। प्रारम्भिक स्तर पर मूल्यपरक शिक्षा ठोस गतिविधियों तथा जीवन की परिस्थितियों के अनुरूप होनी चाहिए। माध्यमिक तथा अन्य उच्च स्तरों पर विद्यार्थी स्वयं मूल्यों की तार्किकता को समझकर उन्हें विचार व कार्य रूप में ढाल सकेंगे।'' वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मानव मूल्य एवं संस्कृति की शिक्षा का विकास करने के लिये शिक्षक, परिवार एवं समाज की भूमिका महत्वपूर्ण है।

विद्या का अभिप्राय ज्ञान से है और ज्ञान का प्रकाश से। जो हमारे अन्तर्जगत को प्रकाशित कर दे, वही विद्या है, जिसका प्रयोजन सत्य को पूर्णत्व की प्राप्ति है। परब्रह्म के प्रकाश से सभी कुछ प्रकाशित होता है। वही पूर्ण है और यह सृष्टि भी इसलिए पूर्ण है। उपनिषद का भी यही उद्घोष है। विद्या के इस दिव्य प्रकाश से निर्मल मन और पवित्र हृदय प्रकाशित हो जाता है। विद्या के द्वारा शरीर मन दोनो अनुशासित होते हैं और आत्मा से सुसम्बद्ध होते हैं। शिक्षा इसी विद्या या ज्ञान के अथक खोज का नाम है, मात्र प्रमाण पत्र प्राप्त करने का साधन नही इसके द्वारा विचार और आचरण दोनो अनुशासित होने चाहिए। शिक्षा जीवन के लिए जीवन्तता के लिए और मनुष्य के सर्वांगीण विकास मुख्यतः आधायात्मिक उन्नति के लिए होनी चाहिए, डिग्रियाँ प्राप्त करने और जीविकोपार्जन के लिए केवल नही। आदर्श गुणों के बिना समग्र डिग्रियाँ और भौतिक उपलब्धियाँ व्यर्थ है। जो शिक्षा हृदय में करुणा का उद्देक न कर सके, सेवा और त्याग के लिए प्रेरित न कर सके, वह निरर्थक और निष्प्रयोजन है। बिना त्याग के प्रेम नही। बिना प्रेम के सेवा नही, बिना सेवा के शान्ति और आनन्द नही निष्काम कर्म और निस्वार्थ सेवा मानव का सर्वोच्च प्रयोजन है। त्याग और सेवा शिक्षा के वास्तविक मूल्य है।

हमारी प्राचीन शैक्षिक पद्धति गुरुकुल की पद्धति थी। विद्वानों आत्मज्ञानी आचार्य अन्तेवासी जिज्ञासु विद्यार्थियों को सत्य भाषण और धर्माचरण की शिक्षा देते थे–सत्यं वद, धर्मचर। हृदय को सत्य अनुभूति को सत्यवाणी ही प्रकट करना और तद्नुरूप ही सत्य आचरण में प्रवृत होना नैतिक शिक्षा का मूल प्रयोजन है। सृष्टि की सही व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य सत्य पथ का अनुसरण करें। इसके लिए बाल्यावस्था से ही संस्कारित होने की आवश्यकता है। बालक का हृदय पवित्र और निश्छल होता है। बाल्यावस्था में पड़े संस्कार अमिट होते हैं। गाँधी जी को महात्मा बनाने का कारण उनको बाल्यावास्था का सत्य निष्ठा के प्रति वह जिज्ञासा भाव था, वो 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक देखने पर उद्वेलित हुआ था। शिक्षा, पद, प्रतिष्ठा और मानव के लिए जो प्राप्य है, सत्याश्चरण

(Righteous Conduct) के बिना सारहीन है, तथ्यहीन है।

सत्य विचार को सत्याचरण में बदलना और अभिव्यक्त करना शिक्षक और विद्यार्थी दोनो का कर्तव्य है। अपने देश में बाल विकास का शैक्षिक अभियान इसी तथ्य को लेकर होना चाहिए, जिसमें योग्य प्रशिक्षित, सेवाभावी गुरुओं के द्वारा बालकों को सही दिशा की ओर प्रेरित किया जा सके, उनके सर्वांगीण विकास का प्रयास किया जा सके। समाज में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका शिक्षक की होती है। अतः दायित्व भी सबसे अधिक उसका ही हो जाता है। शिक्षक का व्यक्तित्व ही शिक्षार्थी के लिए दृष्टान्त बनता है। शिक्षक का सम्पूर्ण जीवन एवं व्यक्तित्व ही वस्तुतः उनका सन्देश होना चाहिए। एक पुष्प की सुगन्ध से चतुर्दिक वातावरण सुगन्धित हो उठता है। यदि शिक्षक का व्यक्तित्व पवित्र होगा और आदर्श गुणों से समन्वित होगा तो हजारो विद्यार्थी राष्ट्र के भावी निर्माण में अपनी उत्कृष्ट भूमिका निभाने में समर्थ होंगे।

आज की शिक्षा प्रणाली में नैतिक मूल्यों की शिक्षा का अभाव है। वह विद्यार्थी को कर्मठ न बनाकर अकर्मण्य बनाती है। वह व्ययसाध्य तो बहुत है, परन्तु सोद्देश्य नही है। शिक्षित होकर व्यक्ति धन प्राप्ति में जुट जाता है। जीवन को सदाचार से अभिमण्डित नही करता है। यह मूल्यहीन निरर्थक शिक्षा प्रणाली ही देश की दुर्दशा का कारण बनी है। आत्मविश्वास आस्था, प्रेम, करुणा, विनय के अभाव में तथाकथित शिक्षित समुदाय केवल राष्ट्र की ही नहीं वरन् समग्र विश्व की जीवन–व्यवस्था को खोखला कर रहा है। आज के शिक्षक वेतन के निमित्त शिक्षण कार्य कर रहे हैं। विद्यार्थी नौकरी प्राप्त करने के लिए, धनोपार्जन के लिए डिग्रियाँ प्राप्त करने में लगे हैं। इसलिए न तो उनमें क्षमताओं का विकास होता है, न आन्तरिक सोच और न नैतिक मूल्यों का, फलस्वरूप समग्र मानव समाज दुष्प्रभावित होता है। स्वस्थ सामाजिक विकास के लिए विद्यार्थियों से अधिक शिक्षकों का दायित्व हो जाता है।

शिक्षक को जितना प्राप्त होता है, उतना ही वह दे पाता है। जहाँ तक उसकी पहुँच होती है, वही तक वह भी विद्यार्थियों को पहुँचाने में समर्थ हो सकता है। जिस सांचे में वह स्वयं ढला होता है। उसी सांचे में वह विद्यार्थियों को ढालने में समर्थ हो सकता है। जिज्ञासा करना, सीखना फिर आत्मसात् करना विद्यार्थी के लिए विहित प्रक्रिया है, तभी वह ज्ञान प्राप्ति का अधिकारी बन सकता है। शिक्षक या गुरु के लिए सद्गुणों को पहले अपने जीवन में उतारना आवश्यक है, तभी वह ज्ञान प्रदान करने का अधिकारी बन सकता है। सत्य, धर्म, शान्ति, प्रेम और अहिंसा ऐसे मानवीय मूल्य हैं जिनका जीवन में आत्मसात् करने से ईश्वरानुभूति होती है। इन मूल्यों से समन्वित शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी स्वयं में निहित आत्मतत्व का साक्षात्कार कर लेता है। इसमें से मात्र एक का ही भली–भाँति अनुपालन करने से मनुष्य दिव्यत्व को प्राप्त कर लेता है। शिक्षकों को इन मूल्यों को अपने जीवन में उतारने का प्रयास और अभ्यास करना चाहिए, तभी वह गुरु कहलाने का अधिकार बन सकता है। एक आदर्श गुरु द्वारा व्याख्यापित सन्दर्भों और तथ्यों को विद्यार्थी सरलता से ग्रहण कर लेता है। रामकृष्ण परमहंस जैसे गुरु के कारण ही नरेन्द्र जैसे विद्यार्थी विवेकानन्द बन सके थे। पुस्तकीय ज्ञान से और पुस्तकों के शिक्षण से विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास संभव नही है। मानवीय मूल्यों की शिक्षा न तो केवल भाषण के द्वारा दी जा सकती है और न केवल पाठ्य पुस्तकों के द्वारा। शिक्षक और विद्यार्थी दोनों को उन्हें अपने जीवन में उतारना होगा। तत्पश्चात् स्वयं को दृष्टान्त बनाकर विद्यालय तथा समाज में प्रस्तुत करना होगा। मानवीय मूल्यों से रहित आज की शिक्षा व्यक्ति में दर्प (ईगो) का सृजन करती है। अहंकार सत्य मार्ग का बाधक तत्व है। इसके लिए भी शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है। उसकी सोच सकारात्मक और निर्माणात्मक होनी चाहिए। ''चरित्र शिक्षा का अत्यन्त बहुमूल्य उपहार है।'' पवित्र प्रेम इस शिक्षा की मूल वाटिका है। प्रेम और करुणा गुरु की प्रकृति के अनिवार्य अंग है। विद्या के लक्षणों में प्रमुख लक्षण है करुणा। प्रेम और करुणा के भाव विद्यार्थी में तभी सम्प्रेषित होंगे, जब वह अपने गुरु के प्रति आस्था तथा विद्या के प्रति निष्ठा का भाव धारण करेगा, तभी उसका जीवन सात्विक होगा, उसके कर्तव्य पवित्र बन जायेगें। कारुण्य और प्रेम

की गरिमा से परिपूर्ण जब गुरु का ह्रदय बालक की अन्तर्निहित शक्तियों और क्षमताओं को पहचानने में समर्थ होता है और उसी के अनुरूप उसके व्यक्तित्व के विकास की तैयारी में तत्पर हो जाता है, तो शिक्षा का मूल प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। इस प्रेम में विद्यार्थी की विनय सम्मिलित हो जाती है, तो शिक्षा की सार्थकता प्रकट हो जाती है। शिक्षा से मानव मूल्य एवं संस्कृति का विकास होने के साथ–साथ हमारे परिवार एवं समाज का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है।

परिवार मानव सम्बंधों का मूल स्रोत है। परिवार वह भूमि है जहाँ बालक का समाजीकरण होता है और वहीं वह अपनी भी प्राथमिक शिक्षा को प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त वह मानवीय, सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक आदि सभी गुणों को सीखता है।

रेमाण्ट के अनुसार – ''दो बच्चे भले ही एक ही विद्यालय में पढ़ते हों, एक ही समान शिक्षकों से प्रभावित होते हों, एक सा ही अध्ययन करते हो फिर भी वे अपने सामान्य ज्ञान, रुचियों, भाषण, व्यवहार और नैतिकता में अपने घरों के कारण जहाँ से वे आते हैं, पूर्णतया भिन्न हो सकते हैं।'' वस्तुतः मूल्यों की शिक्षा बच्चे के घर से शुरू होती है। घर जिसे हम अपना 'घर' कहते हैं वह ईंट–चूने लकड़ी और पत्थरों से नही बना होता है। घर का अस्तित्व बहुत कुछ मानसिक या भावात्मक होता है। 'अपना घर' वह है जहाँ अपने लोग होते हैं। जहाँ निःस्वार्थ स्नेह, सुरक्षा, साथ, सौहार्द, सम्मान और परस्पर समर्पण के भाव पलते हैं। बड़े होकर भी और दूर जाकर भी घर याद आता है, क्योंकि 'घर' मन में है, बालमन में बना होता है जो बड़े होने या दूर जाने पर साथ रहता है। 'अपनापन' यही घर है, घर का भाव है। यही अपनापन उसे शिष्टाचार तथा सदाचार की शिक्षा सिखाता है। परिवार बालक को सिखाता है कि वह शिष्ट व्यवहार करे मीठी वाणी बोले, सम्मान करना सीखे, सच बोले, कहीं पर कूड़ा–करकट न फेंके स्वच्छता रखे, सभी का उचित अभिवादन करे। इन सब आदतों का सामाजिक मूल्य अथवा नैतिक महत्व बचपन में नहीं समझा जा सकता है परन्तु बच्चा सिखाये से नहीं दिखाये से सीखता है उसके सामने जैसे नमूने रखे जायेंगे, वह देखकर वैसे ही करने लगेगा, अनुकरण उसका स्वभाव है। इसका लाभ उठाकर उसके मूल्यों का विकास किया जा सकेगा। माता–पिता अपने स्नेह के बल से और गुरुजन अपने बड़ापन के प्रभाव से बालक के मन में अच्छी बातें और अच्छी आदतें बैठा सकते हैं, क्योंकि वह उनसे स्नेह पाता है, वह उनकी बातों को स्नेह करने लगता है।

स्नेह परिवार का विधान है, स्नेह देता है, माँगता नही। इसी कारण अच्छे परिवार में सभी सदस्य कर्तव्य चेतना से ओत–प्रोत होते हैं। अधिकार की बात कम करते हैं और न ही इसके लिए कोई झगड़ता है। सभी के स्थान, कर्तव्य, कर्म आदि सुनिश्चित होते हैं। परिवार का यही परिवेश बालकों में मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

मानव ने अपने लम्बे इतिहास में एक संगठन का निर्माण किा है। इस संगठन में हमें कुछ कार्यों को करने की स्वतंत्रता है, कुछ को करने का निषेध है। कुछ हमारे कर्तव्य है और कुछ हमारे अधिकार है। इस संगठन में एक व्यवस्था है जिसमें हमें एक निश्चित प्रकार से रहना और व्यवहार करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में इस संगठन में रहने वाले व्यक्तियों के एक–दूसरे के साथ व्यवहार के कुछ सम्बंध होते हैं। मनुष्यों के जिस संगठन में ये सम्बंध पाये जाते हैं। उसी को समाज कहते है। मानव समाज अपने आदर्शो, मूल्यों तथा क्रियाओं को आने वाली सन्तति को प्रदान करता हुआ स्वयं को जीवित रखता है। ***फ्रेंकलिन के अनुसार*** ''समाज शिक्षा संस्थाओं को अपने सदस्यों में ज्ञान, कौशलों, आदर्शों, मूल्यों तथा आदतों का प्रसार करने एवं सुरक्षित रखने के लिए स्थापित करता है जो कि उसके स्वयं के स्थायित्व एवं निरन्तर विकास के लिये परमावश्यक है।''

ओटावे के अनुसार ''समाज शिक्षकों से भरा हुआ है। वे सब जान–बूझकर और चेतन एवं अचेतन रूप में व्यक्तित्व के पूर्ण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। समाज की सांस्कृतिक परम्पराओं के निर्माण में पर्याप्त समय लग जाता है। इनके निर्माण में कितने ही महापुरुषों, विद्वानों की संचित प्रतिभा का उपयोग होता है। तभी

परम्परागत मूल्य प्रादुर्भूत होते हैं। इन मूल्यों को आज की आधुनिकता में विघटित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हमारे नैतिक मूल्यों में परिवर्तन के लिये विभिन्न कारण उत्तरदायी हैं। आज खेत–खलिहान का स्थान कारखानों ने और घरो का स्थान नगरों की सड़कों ने ले लिया। हमें आने वाली पीढ़ी के मनोभावों को समझना होगा। साथ ही उनको मूल्योन्मुख बनाना होगा। समाज इस कार्य को अपनी आदर्श प्रस्तुति से कर सकेगा। समाज विभिन्न सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्रिया–कलापों का आयोजन करके मूल्यों के विकास के लिए अवसर प्रदान कर सकता है।

बालक में अनुकरण की मनोवृत्ति जन्मजात होती है। बालक किशोरों का अनुकरण करते हैं। किशोर अपने बड़ों का अनुकरण करते हैं और युवक प्रौढ़जनों का। प्रौढ़जनों में हमारे शिक्षक, अभिभावक, राजनेता, प्रशासक एवं समाज तथा राष्ट्र के कर्णधार सभी आते हैं। जब तक ये सभी व्यक्ति यह महसूस करते हैं कि उन्हें समाज की नवीन सन्तति में मूल्यों का विकास करना है और इसके लिए उन्हें उनके समक्ष मूल्यों एवं आदर्शों की उपयुक्त प्रस्तुति रखनी होगी, जिसका अनुकरण करके नवीन सन्तति के सदस्य अपने जीवन–पथ को परिष्कृत करने में समर्थ हो सकेंगे। साथ ही वे समाज के योग्य नागरिक बनकर राष्ट्र को उन्नत एवं समृद्ध तथा गौरवशाली बना सकेंगे। इन प्रौढ़जनों की आदर्श प्रस्तुति पर ही शिक्षकों एवं शिक्षा संस्थाओं से यह अपेक्षा की जा सकेगी कि वे भावी नागरिकों को मूल्योन्मुख बना सकेंगे।

इस प्रकार मानवीय मूल्यों के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक चिन्तन तथा क्रियान्वयन से निश्चय ही विश्व में नवीन चेतना और जागृति आयेगी और मानवीय मूल्यों पर आधारित शिक्षा पद्धति भारतवर्ष के लिए ही नही अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए निश्चय ही अनुकरणीय सिद्ध होगी। शिक्षा से मानव मूल्य एवं संस्कृति का विकास होने के साथ–साथ हमारे परिवार एवं समाज का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1– भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, पी0डी0 पाठक, अग्रवाल पब्लिकेशन 2014–15

2– भारत में शिक्षा का विकास, गुरुसर दास त्यागी, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, 2011–12

3– शैक्षिक निबन्ध : डॉ0 रामशकल पाण्डेय, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2010

4– भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्यायें, प्रो0 रमन बिहारी लाल, कृष्णकान्त शर्मा, विनय रखेजा, आर0लाल बुक डिपो, निकट गवर्नमेण्ट इण्टर कॉलेज, बेगम ब्रिज रोड, मेरठ–2012

5– शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त, पी0डी0 पाठक, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2010

6– 'शिक्षा चितेन' शैक्षिक त्रैमासिक पत्रिका, त्रिमूर्ति संस्थान, कानपुर, 2006

7– भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, अर्द्धवार्षिक शिक्षा शोध पत्रिका, 2009